हिंदी साहित्य में मातृत्व और स्त्री संवेदना

Dr. Pratima Khatumra

Assistant professor, Hindi ,Samrat Prithviraj Chauhan Government College, Ajmer, Rajasthan

सार

हिंदी साहित्य में मातृत्व और स्त्री संवेदना स्त्री के आत्मसम्मान, संघर्ष और ममता के पारंपरिक रूपों से आगे बढ़कर उसकी स्वतंत्र पहचान और यथार्थ को दर्ज करने का एक संवेदनशील माध्यम रहा है। [1, 2]

हिंदी साहित्य में स्त्री संवेदना का स्वरूप

- पारंपरिक से आधुनिक दृष्टि: प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य में स्त्री को मुख्य रूप से त्याग, ममता और सहिष्णुता की मूर्ति के रूप में देखा गया। आधुनिक काल और विशेषकर छायावाद के बाद महादेवी वर्मा जैसे रचनाकारों ने स्त्री की वेदना और मुक्ति के प्रश्नों को प्रमुखता दी। [1, 2]
- पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध: समकालीन महिला और पुरुष साहित्यकारों ने समाज की रूढ़ियों, असमानता और पितृसत्तात्मक सोच पर खुलकर सवाल उठाए हैं। [1, 2, 3]
- स्वाभिमान और अधिकार: अब स्त्री संवेदना केवल करुणा या पीड़ा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह स्त्री के हक, आत्मसम्मान, और उसके अपने निर्णयों की अभिव्यक्ति बन चुकी है। [1, 2, 3]

मातृत्व की बदलती अवधारणा

- ममता की चादर से आगे देह और यथार्थ: साहित्य में अब मातृत्व को केवल एक महिमामंडित और त्यागपूर्ण भावना के रूप में नहीं, बल्कि प्रसव की शारीरिक पीड़ा, मानसिक स्वास्थ्य और कामकाजी माँ के संघर्षों के यथार्थ के साथ देखा जाने लगा है। [1]
- वैकल्पिक और आधुनिक मातृत्व: समकालीन विमर्श में सिंगल मदर, सरोगेसी और आधुनिक जीवनशैली के बीच माँ की बदलती भूमिका और उसकी अपनी पहचान (अस्मिता) के द्वंद्व को गहराई से उकेरा जा रहा है। [1]

परिचय

हिन्दी साहित्य में स्त्री – विमर्श की शुरूआत छायावाद काल से माना जाता है। महादेवी वर्मा की कविताओं में वेदना का विभिन्न रूप देखने को मिलता है। उसकी श्रृंखला की कड़िया' स्त्री सशक्तिकरण का सुन्दर उदाहरण है। जिसमें नारी– जागरण एवं मुक्ति का सवाल को उठाया गया है। ऐसा साहित्य जिसमें स्त्री जीवन की अनेक समस्याओं का चित्रण हो स्त्री – विमर्श कहलाता है।

प्रेमचन्द से लेकर राजेन्द्र यादव तक अनेक पुरूष लेखकों ने नारी समस्या को उकेरा है। लेकिन उस रूप में नहीं जिस रूप में स्वयं महिला लेखिकाओं ने लेखनी चलायी है। हिन्दी कथा- साहित्य में नारी-मुक्ति को लेकर स्त्री - विमर्श की गूंज 1960 ई. में पश्चिम में हुआ था । जिसमें चार नाम चर्चित है- उषा प्रियम्वदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी एवं शिवानी। ये नारी मन के छिपे शक्तियों को पहचाना और नारी की दिशाहीनता, दुविधाग्रस्तता, कुण्ठा आदि का विश्लेषण किया।[1,2,3]

हिन्दी पद्य व गद्य में नारी विमर्शः-

समाज के दो पहलू स्त्री-पुरूष एक दूसरे के पूरक है। किसी एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व नहीं है। उसके बाद भी पुरूष समाज ने महिला समाज को अपने बराबर के समानता से वंचित रखा। यही पक्षपात दृष्टि ने शिक्षित नारियों को आंदोलन करने को मजबूर किया जो आज ज्वलंत मुद्दा नारी - विमर्श के रूप में दृष्टिगोचर है।

आदिकाल से ही नारियों की दशा दयनीय एवं सोचनीय थी। स्त्रियों की दशा को देखकर विवेकानंद कहते है - स्त्रियों की अवस्था को सुधारे बिना जगत के कल्याण की कोई सम्भावना नहीं है। पक्षी के लिए एक पंख से उड़ना सम्भव नहीं है।1 विवेकानंद जी महिला समाज की वास्तविक दशा से चिंचित, देश एवं समाज के भलाई महिला समाज के तरक्की के बगैर असंभव बताया है।

सुशीला टाकभौरे के काव्य संग्रह स्वातिबूंद और खारे मोती तथा यह तुम भी जानों काफी चर्चित रहे हैं। इनकी विद्रोहणी कविता में आक्रोश की ध्वनि सुनाई पड़ती है -

"मां-बाप ने पैदा किया था गूंगा

परिवेश ने लंगड़ा बना दिया

चलती रही परिपाटी पर

बैसाखियां चरमराती हैं।

अधिक बोझ से अकुलाकर

विस्कारित मन हुंकारता है

बैसाखियों को तोड़ दूं।"2

उपर्युक्त कविता स्त्री–जीवन की वास्तविकता को प्रदर्शित कर रही है।

स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी गद्यकार एवं कवि रघुवीर सहायजी नारी जीवन की वास्तविक चित्र खिंचा हैं, उन्होंने अपने काव्य में स्वतंत्रता के बाद स्त्री जीवन की अनेक समस्याओं को विषय बनाया है। जिस भारत में स्त्री वैदिक काल में ''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते तत्र रमंते देवता'' कहा जाता था आज वही अनेक शोषण का शिकार हो रही है। वह कहता है -[2,3,4]

''नारी बेचारी है
पुरूष की मारी
तन से क्षुदित है
लपक कर झपक कर
अंत में चित्त है।''3

प्रस्तुत पंक्ति में कविवर सहाय जी नारी को बेचारी कहकर उसकी दयनीय दशा का वर्णन किया है जो अपने अधिकारों के लिए लड़ नहीं पाती। लेकिन वर्तमान में यह स्थिति परिवर्तित नजर आती है। भारत सरकार ने सन् 2001 को महिलाओं के सशक्तिकरण वर्ष के रूप में घोषित किया। अब नारी अपनी हरेक अधिकार को लेकर रहेगी। यही लड़ाई स्त्री – विमर्श या नारी सशक्तिकरण के रूप में परिलक्षित होती है।

स्त्री लेखिकाओं का योगदानः–

हिन्दी कथा साहित्य में नारी विमर्श का जोर आठवें दशक तक आते–आते एक आंदोलन का रूप ले लिया। आठवें दशक के महिला लेखिकाओं में उल्लेखनीय है– ममता कालिया, कृष्णा अग्निहोत्री, चित्रा मुद्गल, मणिक मोहनी, मृदुला गर्ग, मुदुला सिन्हा, मंजुला भगत, मैत्रेयी पुष्पा, मृणाल पाण्डेय, नासिरा शर्मा, दिप्ती खण्डेलवाल, कुसुम अंचल, इंदू जैन, सुनीता जैन, प्रभाखेतान, सुधा अरोड़ा, क्षमा शर्मा, अर्चना वर्मा, नमिता सिंह, अल्का सरावगी, जया जादवानी, मुक्ता रमणिका गुंप्ता आदि ये सभी लेखिकाओं ने नारी मन की गहराईयों, अन्तद्वन्द्वों तथा अनेक समस्याओं का अंकन संजीदगी से किया है।

स्त्री की दशाओं पर अनेक समाज सुधारकों ने चिन्ता व्यक्त किया और यथा सम्भव दूर करने का प्रयास भी। जिससे नारी की स्थिति में परिवर्तन हुआ। ब्रम्ह समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोयायटी, रामकृष्ण मिशन तथा अनेक सरकारी संगठनों ने नारी शिक्षा पर जोर दिया, जिसका सकारात्मक परिणाम आया। वंदना वीथिका के शब्दों में – ''नारियों के लिए सबसे बड़ा अभिशाप उनकी अशिक्षा थी और उनकी परतंत्रता का प्रमुख कारण उनकी आथ्रिाक स्वतंत्रतता का अभाव था। आज स्थिति परिवर्तित हुई है। आज हर क्षेत्र का द्वार लड़कियों के लिए खुला है। वे हर जगह प्रवेश पाने लगी हैं – जमीं से आसमां तक – पृथ्वी से चांद तक (कल्पना चांवला, सुनिता विलियम) उनकी पहुंच है।''4

आज स्त्री समाज सभी क्षेत्रों में अपनी भागीदारी निभा रही है। राजनीतिक हो या सामाजिक, आर्थिक हो या सांस्कृतिक उसके बाद भी यह लड़ाई क्यों? लेकिन सवाल तो यह है कि वह पुरूष की भांति स्वतंत्रता चाहती है। इसीलिए पितृसत्ता का विरोध कर पारम्परिक बेड़ियों को तोड़ना चाहती है।[3,4,5]

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में स्त्रीवादी विचार को पनपने का सुअवसार मिला। भूमण्डलीकरण ने अपने तमाम अच्छाईयों एवं बुराईयों के साथ सभी वर्ग के शिक्षित स्त्रियों को घर से बाहर निकलने का अवसार दिया। परिणामस्वरूप स्त्री अपने वर्जित क्षेत्रों में ठोस दावेदारी की और स्वाललम्बन के दिशा में तीव्र प्रयास भी सामने आए।

स्त्री – विमर्श वस्तुतः स्वाधीनता के बाद की संकल्पना है। स्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है। डॉ. संदीप रणभिरकर के शब्दों में – ''स्त्री – विमर्श स्त्री के स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श है। सदियों से होते आए शोषण और दमन के प्रति स्त्री चेतन ने ही स्त्री– विमर्श को जन्म दिया है।''5

पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्री समाज को हमेशा अंधकारमय जीवन जीने को मजबूर किया है। लेकिन आज की नारी चेतनशील है जिसे अच्छे–बुरे का ज्ञान है। इसीलिए अब इस व्यवस्था का बहिष्कार कर स्वच्छंदात्मक जीवन जीने को आतुर दिखाई पड़ती है। नारी अस्तित्व को लेकर अपने–अपने समय पर कई विद्वानों ने चिन्ता व्यक्त किया है। तुलसीदास जी ने ''ढ़ोल गवार, शूद्र, पशु, नारी– सकल ताड़ना के अधिकारी'' कहकर नारी को प्रताड़ना के पात्र समझा है तो मैथलीशरण गुप्त जी ने ''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आंचल में है दूध और आंखों में पानी'' कहकर नारी के स्थिति पर चिन्ता व्यक्त किया है। प्रसाद ने ''नारी तुम केवल श्रद्धा हो'' कहा है तो शेक्सपियर ने ''दुर्बलता तुम्हारा नाम ही नारी है'' आदि कहकर नारी अस्तित्व को संकीर्ण बताया है।

अब स्थिति कुछ बदली हुई नजर आती है। क्योंकि छठे शताब्दी के पहले तक सिर्फ पुरूष लेखकों का अधिकार था, महिला लेखन को काऊच लेखक कहकर हंसी उड़ाया जाता था। परन्तु अब स्त्री – विमर्श का डंका इसलिए बज रहा है क्योंकि आठवें दशक तक आते–आते महिला लेखिकाओं की बाढ़ सी आ गयी। उसके बाद भी प्रसिद्ध लेखिका सीमोन द बोउआर के उक्त कथन महिला समाज में परिलक्षित होती है – ''स्त्री की स्थिति अधीनता की है। स्त्री सदियों से ठगी गई है और यदि उसने कुछ स्वतंत्रता हासिल की है तो बस उतनी ही जितनी पुरूष ने अपनी सुविधा के लिए उसे देनी चाही। यह त्रासदी उस आधे भाग की है, जिसे आधी आबादी कहा जाता है।''6

नारी मुक्ति से जुड़े अनेक प्रश्न, उन प्रश्नों से जुड़ी सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक बेबसी और उससे उत्पन्न स्त्री की मनः स्थिति का चित्रण अनेक स्तरों पर हुआ है। ''साठ के दशक और उसके संघर्ष का अधिकांश इतिहास जागरूक होती हुई स्त्री का अपना रचा हुआ इतिहास है। नगरों एवं महानगरों में शिक्षित एवं नवचेतना युक्त स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया था जो समाज के विविध क्षेत्र में अपनी कार्य क्षमता प्रमाणित करने के लिए उत्सुक था।''[4,5,6]

हिन्दी कथा लेखिकाओं ने अपने-अपने लेखन में नारी मन की अनेक समस्याओं को विषय बनाया है। अमृता प्रीतम के रसीदी टिकट, कृष्णा सोबती- मित्रों मरजानी, मन्नू भण्डारी-आपका बंटी, चित्रा मुद्गल -आबां एवं एक जमीन अपनी, ममता कालिया- बेघर, मृदुला गर्ग - कठ गुलाब, मैत्रेयी पुष्पा - चाक एवं अल्मा कबूतरी, प्रभा खेतान के छिन्नमस्ता, पद्मा सचदेव के अब न बनेगी देहरी, राजीसेठ का तत्सम, मेहरून्निसा परवेज का अकेला पलाश, शशि प्रभा शास्त्री की सीढ़ियां, कुसुम अंचल के अपनी-अपनी यात्रा, शैलेश मटियानी की बावन नदियों का संगम, उषा प्रियम्वदा के पचपन खम्बे, लाल दिवार, दीप्ति खण्डेलवाल के प्रतिध्वनियां आदि में नारी संघर्ष को देखा जा सकता है। डॉ ज्योति किरण के शब्दों में - ''इस समाज में जब स्त्रियां अपनी समझ और काबलियत जाहिर करती हैं तब वह कुलच्छनी मानी जाती हैं, जब वह खुद विवेक से काम करती है तब मर्यादाहीन समझी जाती है। अपनी इच्छाओं, अरमानों के लिए जब वह आत्मविश्वास के साथ लड़ती हैं और गैर समझौतावादी बन जाती है, तब परिवार और समाज के लिए वह चुनौती बन जाती है।''8

विचार-विमर्श

सदियों से पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था ने नारी को सीमाओं के बंधन में बांध रखा है। नारी स्वतंत्र अस्तित्व की कामना करती रही किंतु उसे हमेशा सामाजिक मर्यादा तथा नैतिकता के मुद्दे से जोड़ दिया गया। परिणाम स्वरूप नारी पीढ़ियों से शोषित एवं अन्याय को सहने पर मजबूर बनी है। नारी को समाज व्यवस्था में कई प्रकार का संघर्ष करना पड़ा है। नारी-विमर्श को लेकर अनेक साहित्यकारों ने अपना मत प्रकट किया है। मैत्रेयी पुष्पा ने नारी की यथार्थ स्थिति की चर्चा करना नारी विमर्श माना है। कात्यायनी का मनाना है कि 'नारी-विमर्श' स्त्री-पुरुष के बीच फैले नकारात्मक भेदभाव को मिटाकर सकारात्मक भाव का निरूपण करना है। वास्तव में नारी-विमर्श अपने समय और समाज जीवन की वास्तविकताओं तथा संभावनाओं को तलाश करने वाली दृष्टि है। कई ऐसी रूढ़ियां एवं प्रथाएं भारतीय समाज में रही है; जिनसे नारीको ही बलि चढ़ाया गया है। सती प्रथा भी उनमें से एक रही है। स्त्री के उत्पीड़न का इतिहास प्राचीन है। नारी की दासता एवं दोयम दर्जे की सामाजिक स्थिति को महिला साहित्यकारों ने उजागर किया है।

हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में रहा है। सभी क्षेत्रों में स्त्री की स्थिति समानता की नहीं है। समकालीन महिला साहित्यकारों ने अपने कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श का चित्रण बहुत ही गहराई से किया है। समकालीन हिंदी महिला लेखिका ममता कालिया, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, नासिरा शर्मा, कृष्णा अग्निहोत्री, चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान एवं अलका सरावगी आदि ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से नारी-विमर्श पर प्रकाश डाला हैं।

समकालीन साहित्य में नारी-विमर्श

समकालीन परिप्रेक्ष्य में नारी–विमर्श पर चिंतन हुआ है। नारी की समाज में अनगिनत समस्याएं रही है, नारी का दुःख एक नारी ही समझ सकती है। स्वतंत्रता प्रेम का उदात्त रूप है, इस बात से हम अवगत है। साहित्यकार अपने समकालीन जीवन यथार्थ का चित्रण रचना के द्वारा प्रस्तुत करता है। 'मृदुला गर्ग' ने भारतीय समाज को नजदीक से देखा और समझा है। मुख्यतः कहानियों में मध्यम वर्गीय चेतना को दर्शाया गया है। इनकी कहानियां व्यक्तिगत से सामाजिक तथा सामाजिक से दार्शनिक बनती नजर आती है। 'यह मैं हूं' कहानी में विशेष रूप से सामाजिक जीवन पर एक स्त्री की व्यथा का चित्रण है। 'मीरा नाची' कहानी में स्त्री– विमर्श को दर्शाया गया है। मन के अंदर के दबे संस्कारों को कहानी में उजागर किया है। लेखिका ने नारी को मानव रूप में देखने के लिए प्रेरित किया है। प्रसव वेदना से पीड़ित नारी प्रति संवेदना जगाकर नारी संघर्ष का चित्रित किया है। विषमता की मार सहती नारी को लेखिका ने निरूपित किया है।[5,6,7]

परिणाम

समाज में नारी का दोहरा संघर्ष होता है। स्त्री का शोषण सिर्फ बलात्कार और वेश्या बनाएं जाने तक ही सीमित न होकर पैदा होने से पहले कोख में, बाद में चिता पर, शिक्षा से वंचित, सजने–संवरने की बंदिशे, कम खाना खाने को देने की, मारपीट की आदि कई समस्याओं से नारी पीड़ित रही है। विवाह को सामाजिक व्यवस्था मानकर स्त्री हमेशा समझौता करती है। फिर भी उसे हताशा एवं कुंठा ही मिलती है। इसका वर्णन 'ग्लेशियर' में गहराई से किया गया है। जिसमें एक स्त्री की कहानी है, जो भावनाओं के तर्कशक्ति एवं विवेक पर भी गहरा अधिकार करती है।

मृदुला गर्ग ने उपन्यासों में भी स्त्री विमर्श को एक अनोखे अंदाज में व्यक्त करने का प्रयास किया है। 'मैं और मैं' उपन्यास में 'राकेश' अपनी पत्नी से इसप्रकार से बातचीत करता है; जो पुरुष प्रधान समाज की सोच को दर्शाता है। 'कठ गुलाब' उपन्यास में बेटा और बेटी के भेद को दर्शाया गया है। जब 'विपिन' 'नीरजा' से कहता है कि "मुझे तुमसे मेरा ही बेटा चाहिए। क्या तुम मेरे स्पर्श तुम्हारे गर्भ में रखकर मुझे एक बेटा दोगी?"1 अतः यहां बेटा और बेटी के भेद की मानसिकता का चित्रण हुआ है। 'नीरजा' उसे ठुकराकर ऐसे अधेड़ उम्र वाले से विवाह करती है; जिसे अब बच्चा नहीं चाहिए। 'नीरजा' 'विपिन' से कहती है कि "हालांकि बेटा–बेटी एक समान है, यह कानूनों बनके बरसों बित गए किंतु हर तरफ यही हो रहा है नालायक बेटे को सब कुछ और बेटी को बेदखल कर दिया जाता है। पर मैं इसे चुपचाप क्यों सहन कर लूं? इसीलिए यह रीत है, यही परंपरा है किंतु आज मुझे मेरी अस्मिता कि मेरी स्वाभिमान की पहचान हो गई है।"2 परिवार में बेटी को नहीं बेटे को प्राथमिकता दी जाती है, उसके साथ समानता का व्यवहार नहीं होता। डॉ. अंजली चौधरी का कथन है कि "लेखिका ने सिद्ध कर दिया कि समय चाहे कितना भी प्रगति क्यों न कर लें, स्त्रियों की स्थिति में सुधार आना अत्यंत कठिन कार्य है। लेखिका ने अपने समग्र साहित्य का यही उद्देश्य निश्चित किया है कि अगर व्यक्ति से समाज बनता है तो क्या एक स्त्री व्यक्ति नहीं है? क्या उससे समाज नहीं बनता? तो फिर क्यों इसकी छवि और स्थिति को इतनी खराब रखते हैं जिससे हमारा समाज भी खराब कहलाए...।"3 मृदुला गर्ग के कथा–साहित्य में नारी के व्यक्तित्व की स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने की छटपटाहट है।[6,7,8]

समकालीन महिला की समस्याओं को 'ममता कालिया' ने साहित्य में स्थान दिया है। साथ ही समस्याओं का समाधान भी दर्शाने का प्रयास किया है। ममता कालिया ने अपने साहित्य में युवा, सुशिक्षित, वृद्ध सभी प्रकार की स्त्रियों की समस्याओं को उजागर करती है। स्त्री चाहे कितनी ही सुशिक्षित क्यों ना हो, उसके प्रति समाज का दृष्टिकोण अच्छा नहीं होता। उसकी शिक्षा को कोई महत्व नहीं दिया जाता साथ ही उसकी प्रतिभा को नजरअंदाज किया जाता है। उसको घर की चारदीवारी में कैद करने की प्रवृत्ति होती है; जो साहित्य में चित्रित की गई है। ममता कालिया के 'बेघर' उपन्यास की नायिका की समस्या इससे अलग नहीं है। संजीवनी वह नौकरी करती है और घरवाले उसके शादी के प्रति इसलिए उदास है कि वह पैसे कमाकर लाती है। उपन्यास के नायक परमजीत की शादी तय होने पर लड़कीवालों से चार हजार नगद, पंद्रह तोला सोना, बारात में दो सौं आदमियों को दावत में देसी घी, लड़के के लिए दो सूट और एक लड़के के लिए और पिताजी के लिए आदि मांग रखी जाती है। 'परमजीत' पढ़ा लिखा होने के बावजूद भी दहेज प्रथा का विरोध नहीं कर पाता। बाद में मिले दहेज से 'परमजीत' अपनी बहन बिन्नों के लिए दहेज की तैयारी करता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी समाज में प्रचलित प्राचीन प्रथाएं दिखाई देती है।

निष्कर्ष

समकालीन साहित्य में नारी–विमर्श को महिला साहित्यकारों ने मुख्यतः गहराई से प्रस्तुत किया है। अतः स्त्री समाज की जीर्ण रूढ़ियों से मुक्त होना चाहती है। अधिकांशतः समस्याएँ सामाजिक क्षेत्र में जन्म लेती हैं तथा उसका संबंध अधिकतर नारी जाति से है। सामाजिक अंध परंपराओं में दबी पिसी स्त्री की पीड़ा, व्यथा, दुःख–दर्द ही नहीं अपितु शोषक व्यवस्था के विरोध में आक्रोश का स्वर भी निकालती है। सदियों से साहित्य तथा समाज का प्रमुख अंग बना नारी–विमर्श समकालीन समय में प्रासंगिक बना है।[8]

संदर्भ

1. आजकलः मार्च 2013 - पृष्ठ 20
2. वहीं – पृष्ठ 29
3. पंचशील शोध–समीक्षा – पृष्ठ 82
4. आजकलः मार्च 2013 - पृष्ठ 27
5. पंचशील शोध–समीक्षा – पृष्ठ 87
6. आजकलः मार्च 2013 - पृष्ठ 24
7. आजकलः मार्च 2011 - पृष्ठ 25
8. पंचशील शोध–समीक्षा – पृष्ठ 61